

## ‘महाभोज’ : राजनीतिक यथार्थ

### सारांश

महिला कथाकार मन्नू भण्डारी द्वारा रचित महाभोज (1979) एक राजनीतिक उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध उत्तर भारत के एक गाँव सरोहा से है, जो शहर से बीस मील की दूरी पर स्थित है। यह गाँव भारतीय गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें सरोहा उपचुनाव को आधार बनाकर आज की राजनीतिक विडम्बनाओं और शोषितों की कथा-गाथा की करुण संवेदनाओं को उकेरने की चेष्टा की गई है। चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दल के नेता किस प्रकार के ओछे हथकंडों को अपनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं, जनता को आश्वासनों और प्रलोभनों के द्वारा किस प्रकार भ्रमित किया जाता है तथा किस प्रकार निर्दोष लोग शोषण और अत्याचार का शिकार होते हैं एवं भ्रष्ट लोग मौज-मस्ती का जीवन व्यतीत करते हैं और आदर्शवादी ईमानदार लोग या तो मार दिये जाते हैं अथवा जेल में बन्द कर दिये जाते हैं या नौकरी से निलम्बित कर दिये जाते हैं— इसी यथार्थ-बोध को इस उपन्यास में उजागर करने का प्रयास किया गया है।

**मुख्य शब्द** : घात-प्रतिघात, जोड़ तोड़ की राजनीति।

### प्रस्तावना

‘महाभोज’ महिला कथाकार मन्नू भण्डारी द्वारा लिखित एक समकालीन राजनीतिक उपन्यास है। इसमें राजनैतिक परिवेश का पूर्ण चित्र न खींचकर केवल चुनावी परिवेश को आधार बनाया गया है। महाभोज का कथा क्षेत्र उत्तर भारत के एक गाँव सरोहा से है, जो शहर के बीस मील की दूरी पर स्थित है। तथा कथावस्तु का आरम्भ सरोहा उपचुनाव की घोषण के महीने भर पहले झोपड़ियों में लगी आग की घटना का प्रमाण जुटा रहे विसेसर नामक एक हरिजन युवक की हत्या से होती है।

‘महाभोज’ उपन्यास की घटना काल की दृष्टि से सन् 1977 के बाद की है। इसकी पुष्टि लखन और दा साहब के इस संवाद के माध्यम से स्पष्टतः होती है –

“इन मशाल वालों को छूट मिली हुई है, उल्टा-सीधा जो मरजी आए छापने की। इमरजेन्सी में बन्द हो गया था। ऐसे अखबार पर तो आपको भी...।”<sup>1</sup>

“..... दा साहब स दत्ता बाबू भभक कर बोले, “अशोभनीय ? मैं कहता हूँ काले अक्षरों में लिखा जाएगा उन शर्मनाक ज्यादतियों का इतिहास-गला घोटकर रख दिया था सबका। मैं तो.....।”<sup>2</sup>

गहराई से विश्लेषण करने पर ऐसा स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि इस उपन्यास की घटना का आधार सन् 1978 की घटना है।

‘महाभोज’ उपन्यास में चित्रित राजनीतिक यथार्थ का विवेचन-विश्लेषण निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है –

‘महाभोज’ उपन्यास में राजनीतिक दलों द्वारा किये जाने वाले चुनाव प्रचार का सम्यक् और व्यापक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में चुनावी वातावरण का प्राधान्य है। जिस प्रकार चुनावी वातावरण के बीच मुख्यतः सत्तारूढ़ दल तथा प्रतिपक्ष के नेता चुनाव जीतने के लिए सीधी-सादी जनता को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करने में तत्पर दिखाई देते तथा अत्यन्त ओछे हथकंडों का दुष्प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार इस उपन्यास में सत्तारूढ़ दल के मुख्यमंत्री तथा विपक्ष के नेता सुकुल बाबू इसी प्रकार का उपक्रम करते दिखाई देते हैं। दोनों एक दूसरे पर कीचड़ उछालने से किसी भी प्रकार से बाज नहीं आते। ‘महाभोज’ उपन्यास में चुनाव-प्रचार में संलग्न इस प्रकार के नेताओं का चरित्र पूरी तरह उभरकर सामने आता है। दा साहब तथा सुकुल बाबू चुनाव प्रचार में अपनी गोटियाँ अपने-अपने ढंग से बिछाते हैं। भाषण सभाओं में सीधी-सादी जनता के बीच वे दोनों ही उनके दुःख-दर्द पर मगरमच्छी आँसू बहाते हैं, जुलूस निकालते तथा लोगों को खरीदने का प्रयास करते हैं। इस संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

“और तय हुआ कि अगले सप्ताह ही कोई दिन तय करके एक जुलूस दा साहब के यहाँ जाएगा, जिसका नेतृत्व सुकुल बाबू करेंगे। मजमा उखड़ने

**सुनील कुमार राय**  
जं. आर. एफ.,  
हिन्दी विभाग,  
बर्द्धमान विश्वविद्यालय,  
भद्रेश्वर, पश्चिम बंगाल

तक लोगों में काफी उत्तेजना आ गई थी और सुकुल बाबू को लगा कि उनका तालमेल लोगों से बैठ गया।<sup>3</sup>

घात-प्रतिघात की राजनीति चुनाव-प्रचार के दौरान दोनों दलों द्वारा दिखाई पड़ती है। सुकुल बाबू बिसेसर के पिता हीरा के घर उसे (झूठी) दिलासा देने के उद्देश्य से जाते हैं, ताकि गाँव वालों पर उनकी सहानुभूति का प्रभाव पड़े, लेकिन हीरा जब वहाँ मिलता तो उन्हें झल्लाहट होने लगती है। इससे भी आगे बढ़कर दा साहब अपनी 'घरेलू उद्योग-योजना' का उद्घाटन बिसू के पिता हीरा से कराते हैं और मंच पर उसे अपने साथ बिठाते हैं, जिसका प्रभाव अनुकूल पड़ता है। विपक्षी दल के नेता सुकुल बाबू अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से विशाल रैली का आयोजन करते हैं।

आज की राजनीति में पद ही प्रमुख है। चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दल के नेता लम्बी चौड़ी आदर्श की बातें करते हैं लेकिन उनकी कथनी और करनी में कोई समानता नहीं होती। चुनाव जीतने के बाद वे आम जनता को अंगूठा दिखा देते हैं। दा साहब और सुकुल बाबू में कोई अन्तर नहीं है। दा साहब 'मशाल' के सम्पादक दत्ता बाबू के समक्ष गरीबों के प्रति सहानुभूति और हमदर्दी का नकाब ओढ़कर बड़े-बड़े आदर्शों की बातें करते हैं— "दा साहब की आत्मा जैसे चीत्कार कर उठी" दुहाई गरीबों को सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बाँट कर रखो..... कभी जात की दीवारें खींचकर तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर। जनता का बंटा विखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्रोत है। कुछ गलत कह रहा हूँ मैं?"<sup>4</sup>

दा साहब इस तथ्य को भली भाँति जानते हैं कि बिसेसर की हत्या में सबसे प्रमुख हाथ जोरावर का है, फिर भी उसके विरुद्ध किसी तरह की उचित करवाई नहीं कराते, क्योंकि जोरावर के पास वाटो की बहुल संख्या है। अगर वह नाराज हो गया तो उन वोटों से उन्हें वंचित होना पड़ेगा। इस कारण दा साहब बिसेसर की हत्या को आत्महत्या सिद्ध करने-कराने में लगे रहते हैं। अन्त में तथ्य को तोड़ मरोड़कर बिन्दा को असली अभियुक्त सिद्ध कराकर जेल भिजवा देता है। यही स्थिति विपक्ष के नेता सुकुल बाबू की है। उनके भी कहने और करने में किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है। वे जनता के हमदर्द बनकर बड़ी ऊँची आवाज में बिसू की मौत का हिसाब सतारुद्ध दल के मुख्यमंत्री दा साहब से मांगते हैं लेकिन दूसरी ओर निर्दोष बिन्दा की गिरफ्तारी के विरुद्ध दबी जबान भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर पाते। बल्कि विडम्बना यह है कि उसकी गिरफ्तारी से मन ही मन बेहद खुश हैं कि अब उनकी पत्नी रूक्मा से आगजनी की घटना से सम्बन्धित कागजातों को हासिल कर, उसे उछाल कर चुनावी वातावरण को अपने अनुकूल बनाकर विजयी हुआ जा सकता है। उन्हें दुःख इस बात का है कि अगर बिन्दा की गिरफ्तारी उनकी रैली के पूर्व हुई होती तो उसे भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना कर अपनी आवाज बुलन्द करके जनता को अपनी ओर अधिक मोड़ पाते और इस प्रकार उनके मिलने वाले मतों की संख्या निश्चय ही बढ़ पाती। इस प्रकार, चाहे दा साहब हो या सुकुल बाबू—दोनों के ही व्यक्तित्व में एक प्रकार का अन्तः

विरोध दिखाई देता है और उनकी कथनी और करनी में भी कहीं-किसी प्रकार का मेल नहीं दिखाई देता।

उपन्यास में मूल रूप से जोड़-तोड़ की राजनीति का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसका मूल कारण यह है कि इस उपन्यास में चुनावी माहौल को आधार के रूप में लिया गया है और इस माहौल में जोड़-तोड़ की राजनीति ही प्रधान होती है। सभी दल के नेता किसी भी प्रकार से चुनाव में विजय प्राप्त करने के लिए अतुर बने रहते हैं। अतः उनकी दृष्टि जनता के वोटों पर केन्द्रित रहती है। चाहे सतारुद्ध दल हो अथवा विपक्ष—सभी अपने-अपने ढंग से बराबर जोड़-तोड़ की राजनीति में लिप्त रहते हैं। दा साहब इस कला में अपेक्षाकृत अधिक पारंगत दीख पड़ते हैं। जब उनकी अवगति इस बात से होती है कि उनके मंत्रिमण्डल के शिक्षा मंत्री—लोचन बाबू एक सौ चालोस विधायकों में से पिच्चासी विधायकों को अपने साथ मिला चुके हैं, तब वे सबसे पहले उन्हें पदच्युत करके प्रभावशाली विधायकों में से कुछ को जैसे राव और चौधरी आदि को पद का लोभ देकर अपने खेमों में साथ जोड़ कर अपनी कुर्सी बचाने में सफल हो जाते हैं। विपक्ष के नेता सुकुल बाबू भी बहुत बड़े गोटीबाज हैं। वे भी जोड़-तोड़ की राजनीति में कोई कम दक्ष नहीं हैं। सुकुल बाबू यह जानते हैं कि जोरावर के पास काफी सारे वोट हैं और उसके ये सारे वोट दा साहब के प्रत्याशी लखन को ही प्राप्त होंगे इसलिए वे अपने सहायक काशी के माध्यम से जोरावर को लखन के विरुद्ध चुनाव लड़ने के लिए तैयार कर लेते हैं। एक उदाहरण देखिए इस सन्दर्भ में..... "जोरावर वाले वोट ही सबसे बड़ी ताकत है दा साहब की। पैंतीस प्रतिशत सॉलिड वोट। एक नहीं टूटता इनमें से।"<sup>5</sup>

फिर काशी कहता है :

"हमने जोरावर को तैयार कर लिया है खड़ा होने के लिए, आखिरी दिन अपना नामांकन-पत्र भरेगा।"<sup>6</sup>

सुकुल बाबू की यह राजनीति दा साहब के समक्ष विफल हो जाती है। दा साहब साम, दाम और दंड— तीनों प्रकार की नीति में विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं। जैसे उन्हें यह बात मालूम होती है कि जोरावर लखन के विरुद्ध नामांकन-पत्र दाखिल करने वाला है, वे उसे बिसू की हत्या से सम्बन्धित रिपोर्ट की फाईल का हवाला देते हुए भयाक्रान्त कर देते हैं। इस सम्बन्ध में उपन्यास से एक उदाहरण देखें—

'इस बार हमने भी सोचा कि चुनाव लड़ लें। फारम भरने को आय थे.... आप कह दें तो भर दें।'

'क्या, फिर बहुत ठण्डी और सख्त आवाज में दा साहब ने कहा—

"उधर बिसू ने आगजनी के जो प्रमाण जुटाए थे, उन्हें लेकर बिन्दा दिल्ली जाने वाला है, इधर सक्सेना ने सारे प्रमाण जुटा लिये हैं और तुम्हें चुनाव लड़ने की सूझ रही है। विधानसभा की जगह मुझे तो डर है कि कहीं जेल.....।"

"नहीं भरना हो तो जरूर भरो। मैं कभी मना नहीं करूँगा। बल्कि एक तरह से मुक्त होऊँगा.....।"<sup>7</sup>

खाने पर भी बातचीत के विषय को दा साहब ने फाइल से ज्यादा इधर-उधर सरकने नहीं दिया, बल्कि

स्थिति की सारी भयंकरता को उसके नंगेपन के साथ पेश कर दिया।

इस प्रकार, चुनाव लड़ने का मन बनाए जोरावर को बड़ी बुद्धिमानी से पीछे लौटा दिया और उधर डी0 आई0 जी0 सिन्हा को बुलाकर उसे समझा कर एस0 पी0 सिन्हा को नौकरी से निलम्बित कर दिया।

‘महाभोज’ उपन्यास का आधार—फलक मुख्यतः चुनावी परिवेश है। चुनावी वातावरण के दौरान सत्तारूढ़ दल तथा विरोधी दल के समस्त नेता सीधी—सादी जनता को मूर्ख बनाने और उनका मत प्राप्त करने के लिए उन्हें झूठे आश्वासन देते, झूठे वायदे करते तथा झूठमूठ का प्रलोभन देते हैं। पहले तो सत्ता दल के नेता लोगों की उचित शिकायतों पर ध्यान ही देते, किन्तु चुनाव के समय जन—कल्याण की भावना उनके दिलोदिमाग में अनायास उमड़ पड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप नयी—नयी योजनाओं की शुरुआत हाने लगती है। किसानों और मजदूरों को बिना ब्याज के ऋण उपलब्ध कराये जाने लगते हैं। ‘महाभोज’ उपन्यास में भी बिल्कूल इसी ढर्रे पर सत्तारूढ़ दल के मुख्यमंत्री दा साहब ‘घरेलू उद्योग योजना’ का प्रारम्भ करते हैं।

चुनावी सरगर्मी के कारण विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू जहाँ एक ओर जनता को बिसू की हत्या का हिसाब माँगने की बात कहकर उन्हें कोरा आश्वासन प्रदान करते हैं, वहाँ दूसरी ओर मुख्यमंत्री दा साहब भी सरोहा गाँव की जनता को आश्वस्त करते हैं कि बिसू के हत्यारे को वे अवश्य पकड़वायेंगे तथा सजा दिलवायेंगे। इस सम्बन्ध में वे न्यायपालिका तथा प्रशासन—दोनों को सहा और अनुकूल कार्य करने का आदेश देते हैं तथा इस सिलसिले में वे फिर से जाँच का आदेश देते हैं ताकि भोली—भाली जनता उनकी बातों पर विश्वास करके असली बात को भूलकर उनके बहकावे में आकर उन्हें वोट दे कर विजयी बनावे। दा साहब इस कार्य में इतने निपुण हैं कि इस मौके पर संचार—व्यवस्था पर भी काबू करने से नहीं चूकते। ‘मशाल’ के सम्पादक दत्ता बाबू को वे कागज के परमिट को दुगुना करके तथा सरकारी विज्ञापन देने का प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लेते हैं। इतना ही नहीं — डी0 आई0 जी0 सिन्हा को ‘पदोन्नति’ का लाभ प्रदान कर वे मनचाही रिपोर्ट प्राप्त कर लेते हैं तथा निर्दोष बिन्दा को जेल भिजवा देते हैं।

‘महाभोज’ उपन्यास में आपराधिक तत्वों को संरक्षण देकर सत्तारूढ़ दल की सरकार स्वयं ही आतंक की राजनीति करती हुई दिखाई देती है। आज की राजनीति में गुण्डागर्दी का बोलबाला है। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत सर्वत्र चरितार्थ होती हुई दृष्टिगत होती है। पुलिस और प्रशासन—तंत्र दोनों ही इस दिशा में अग्रणी हैं। पुलिस दुर्बलों की सहायता और सुरक्षा न करके उन्हें त्रास और प्रताड़ना देती है और सबल और अपराधियों के अनाचार और अत्याचार को बढ़ावा दिया जाता है। इसके पीछे उनकी निजी स्वार्थ—भावना काम करती है। जोरावर एक ऐसा ही अत्याचारी और गुण्डा है, जो पहले तो सरोहा गाँव के हरिजन टोले में आगजनी की घटना कराकर अनेक हरिजनों को जीते—जी जलवा देता है और अनेक झोपड़ियों को आग में स्वाहा कर देता है। बिसू गाँव के किसानों और मजदूरों में चेतना का प्रसार

करता है, जिसके फलस्वरूप वह गुण्डों से उसकी हत्या करा देता है। सबको इस बात का पता है कि इन सारी घटनाओं में जोरावर का ही मुख्य हाथ है, फिर भी कोई भी व्यक्ति अपनी जिह्वा पर उसका नाम नहीं लेता; क्योंकि सब उससे भयाक्रान्त हैं। पुलिस भी इस तथ्य से भली—भाँति अवगत है फिर भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं कर पाती। इस संबंध में बिन्दा का यह कथन सर्वथा सही और प्रासंगिक प्रतीत होता है—

“अरे दा साहब, काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ ? हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस तमाशा देखती रही और महीने—भर से खुद तमाशा कर रही है। हुआ आज तक कुछ ?”

“कौन नहीं जानता कि आग किसने लगवायी ? आप नहीं जानते ? फिर पकड़वाते क्यों नहीं ..... अभी किसी गरीब का मामला होता तो पीस कर रख दिया जाता बेचारे को।”<sup>8</sup>

सकसेना के यह कहने पर कि तुम चाहते हो कि बिसू की मौत का असली कारण पता लगे ? बिन्दा उत्तर देते हुए कहता है —

“मेरे चाहने से क्या होता है — जोरावर की रखैल इस थानेदार ने रिपोर्ट तैयार करके दे ही दी है। भरी सभा में दा साहब भी कह गये कि बिसू ने आत्म हत्या की है। ‘मशाल’ वालों ने छाप भी दिया।”<sup>9</sup>

राजनीति में पत्रकारिता की अहम् भूमिका होती है। पत्रकारिता से सत्यान्वेषण तथा तथ्यात्मक अभिव्यक्ति की अपेक्षा की जाती है। पत्र और पत्रकार समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं— यानी उन्हें होना चाहिए। लेकिन आज की दलदल राजनीति में पत्र और पत्रकार दोनों की ही भूमिका बदल चुकी है। आज की पत्रकारिता के सन्दर्भ में चमनलाल ‘कथादश’ नामक पत्रिका में लिखते हैं कि “आज तो स्थिति और भी बदतर है। किस तरह से पत्रकारिता को इस व्यवस्था में झूठी खबरें बना—बनाकर, सच्ची खबरें दबाकर, यथार्थ को विकृत रूप में प्रस्तुत कर पत्रकारिता के पूरे की प्रतिष्ठा पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, ‘मशाल’ प्रसंग तो उसका बहुत छोटा—सा नमूना है।”<sup>10</sup> आज स्वार्थपरता इतनी प्रचण्ड रूपधारण कर चुकी है कि जनता के प्रतिनिधित्व करने वाले पत्र तथा पत्रकार अपने छोटे—छाटे स्वार्थ और लाभ के लिए जनता के स्वर को सच्चाई का गला घोटकर सत्तारूढ़ दल की सरकार और पार्टी के गुलाम बन गए हैं और इसीलिए आज की पत्रकारिता में वही सभी बातें प्रकाशित की जाती है जो और जैसा कि सरकार चाहती है या प्रशासक चाहते हैं। ‘महाभोज’ में ‘मशाल’ पत्र के सम्पादक दत्ता बाबू पहले तो तटस्थ भाव से ‘मशाल’ का सम्पादन करते हैं, इससे उनकी लोकप्रियता बढ़ जाती है। लेकिन जब मुख्यमंत्री दा साहब द्वारा कागज का परमिट दुगुना और सरकारी विज्ञापन प्राप्त हो जाता है तो उनका दृष्टिकोण एकदम बदल जाता है और वे ‘मशाल’ में वही सब कुछ प्रकाशित करने लगते हैं, जो मुख्यमंत्री दा साहब को उनकी पार्टी को तथा प्रशासकों को रूचिकर लगता है। इस प्रकार थोड़े से लाभ के लिए बिक जाते हैं।

पुलिस व्यवस्था में राजनीतिक हस्तक्षेप से आज मानवीय आदर्श बौने और लूले—लंगड़े हो गये हैं। आज

रक्षक ही भक्षक हो गया है। पुलिस और प्रशासन का दायित्व है— दुर्बलों को संरक्षण प्रदान करना तथा गुण्डों, बदमाशों और अत्याचारियों को दबाना। लेकिन आज तो स्थिति एकदम विपरीत दिखाई देती है। आज तो समाज में जो दुर्बल है, असहाय है, पुलिस की लाठी उसी पर टूटती है जेल उन्हीं लोगों से भरी जाती है— जो गुण्डे और बदमाश है, पुलिस और प्रशासन के लिए वे ही या वैसे ही लोग संरक्ष्य हैं; क्योंकि उनसे अपने स्वार्थ की साधना होती है। 'महाभोज' उपन्यास में इसका अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। पुलिस दुर्बलों, दलितों और असहायों की रक्षा क्या करेगी, वह तो उन्हीं को प्रताड़ित करती है। पुलिस के विरुद्ध कोई अपनी जुबान तक नहीं हिला पाता। अगर कोई हिम्मत जुटाकर कुछ बोलने का दुस्साहस करता भी है तो उसे किसी-न-किसी प्रकार से फंसाकर दण्डित किया जाता है और जेल की यंत्रणा दी जाती है। इस उपन्यास में बिसेसर और बिन्दा-दोनों को ही इसी विडम्बना का शिकार होना पड़ा। इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण देखा जा सकता है—

“जिन्होंने जलाया, उन पर कोई उंगुली उठाने वाला तक नहीं। बेचारे बिसू ने उंगुली उठाने की कोशिश की तो हमेशा के लिए चुप कर दिया उसे। अब होगी किसी की हिम्मत जो चूँ कर जाय ? हो ही नहीं सकती। पुलिस गवाही लेने आई, तब भी किसी की हिम्मत नहीं हुई कि सच बात कह दे।”<sup>11</sup> इसी प्रकार, बिन्दा मुख्यमंत्री दा साहब से कहता है— “अरे दा साहब काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ ? हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस तमाशा देखती रही और महीने भर से खुद तमाशा कर रही है।”<sup>12</sup>

बिन्दा के मन में पुलिस और थानेदार के प्रति घृणा और आक्रोश का तीव्र भाव है। इसलिए वह थानेदार को जोरावर (सामन्त, पूंजीपति, गुण्डा, अत्याचारी और शोषक) की 'रखैल' कहकर सम्बोधित करता है।

उपन्यास के आखिर में पुलिस बिन्दा को जेल में बन्द कर देती है और उसके साथ अमानुशी व्यवहार करती है। पुलिस के अत्याचारों का एक चित्र दखिए— “पुलिस की बेंतों और ठोकरों की बौछार के बीच बिन्दा कह रहा है, “मैंने बिसू को नहीं मारा.....मैं बिसू को मार ही नहीं सकता। मुझे तो उसकी आखिरी इच्छा पूरी करनी है। मैं उसे पूरी करके ही रहूँगा.....चाहे जैसे भी हो, जो भी हो.....।”

‘आखिरी इच्छा पूरी करेगा ? लेकर...।’ और पुलिस वालों की मार की रफ्तार ओर बढ़ जाती है— मार डालो, मार डालो। तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।’

‘नहीं मार सकता.....ले देख।’ और फिर बिन्दा के शरीर को रूई की तरह धुनकर वे उसे बे-दम कर देते हैं।<sup>13</sup>

राजनीति के विषाक्त आपाधापी के बीच दुराचारियों और भ्रष्ट राजनेताओं का बोलबाला दिखाई देता है। ऐसे माहौल में निर्दोष व्यक्ति की जानबूझ कर सजा, प्रताड़ना और यंत्रणा दी जाती है और जो भ्रष्टजन हैं, उनका पौ बारह हो। जोरावर हो चाहे दा साहब, दत्ता सिन्हा गलत तरोकें से आई0 जी0 का पद प्राप्त कर लेता है, जिसके उपलक्ष्य में वह टैक्स कमिश्नर वर्मा उस पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं— “यार, बड़ी रौनकें लगा रखी हैं? लगता है, बिना डिर्जब किये प्रमोशन मिल गया है तुझे....वरना रूटीन में ऐसा क्या रखा है ?”<sup>14</sup>

### निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि “महाभोज समकालीन राजनीतिक परिवेश से सम्बद्ध उपन्यास है जिसमें राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता शोतानियत और नैतिक संडँध का अत्यन्त यथार्थ और चित्र प्रस्तुत किया गया है।”<sup>15</sup> इस दृष्टि से यह उपन्यास अपने ढंग का बिल्कुल अकेला है।

### सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भण्डारी मन्नू : महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 26 वाँ संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या - 13।
2. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या -30।
3. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 26।
4. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 33।
5. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 62।
6. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 63।
7. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 113-114।
8. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 53-54।
9. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 94।
10. हरिनारायण : कथादेश : अंक 11, जनवरी 2009, पृष्ठसंख्या - 188।
11. भण्डारी मन्नू : महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 26 वाँ संस्करण 2009, पृष्ठसंख्या - 24।
12. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 53।
13. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 128।
14. उपरोक्त, पृष्ठसंख्या - 121।
15. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण - 2002, पृष्ठसंख्या- 341।

### पुस्तकें

1. भण्डारी मन्नू : महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 26 वाँ संस्करण 2009।
2. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण - 2002।

### पत्रिका

1. हरिनारायण : कथादेश : अंक 11, जनवरी 2009।